दुर्खीम का सामाजिक एकता का सिद्धान्त
(Durkheim's Theory of Social Solidarity)

सामाजिक एकता प्रत्येक समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि कोई भी समाज एकता अथवा एकता के बिना जीवित नहीं रह सकता। वास्तव में व्यक्ति की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिन्हें वह स्वयं पूरा नहीं कर सकता। इसलिए उसे अन्य व्यक्तियों पर आश्रित होना पड़ता है। इसी कारण व्यक्ति को समाज की मान्यताओं के अनुकूल चलना पड़ता है जिसके कारण व्यक्तियों में सामूहिक चेतना आती है। प्रत्येक समाज कुछ नियमों द्वारा सामूहिक चेतना बनाए रखता है। इस प्रकार, अन्योन्याश्रितता सामूहिक चेतना लाती है तथा सामूहिक चेतना सामाजिक एकता बढ़ाने में सहायता देती है।

सामाजिक एकता का अर्थ एवं प्रकृति
(Meaning and Nature of Social Solidarity)

सामाजिक एकता या संश्लिष्टता की अवधारणा दुर्खीम द्वारा ही प्रस्तुत नहीं की गई है अपितु अनेक अन्य विचारकों; जैसे **प्लेटो, अरस्तू, फरग्यूसन, एडम स्मिथ, सेण्ट साइमन, कान्त** तथा **स्पेन्सर** ने भी अपने लेखों एवं रचनाओं में इसका उल्लेख किया था। परन्तु दुर्खीम ने इसे एक नए रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार सामाजिक एकता का अर्थ समाज की विभिन्न इकाइयों में सामंजस्य से है अर्थात् यह ऐसी परिस्थिति है जिसमें समाज की विभिन्न इकाइयाँ अपनी भूमिका निभाती हुई सम्पूर्ण समाज में सन्तुलन बनाए रखती हैं। उनके अनुसार सामाजिक एकता पूर्णतः एक नैतिक घटना है क्योंकि इसी के द्वारा पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना को बढ़ावा मिलता है।

सामाजिक एकता की प्रकृति के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि एकता एक अमूर्त (Abstract) अवधारणा है क्योंकि इसको स्वयं कभी भी देखा नहीं जा सकता अपितु इसके परिणाम या प्रभावों को ही देखा जा सकता है। दूसरे, सामाजिक एकता एक सापेक्ष (Relative) अवधारणा है क्योंकि न ही तो किसी समाज में पूर्ण रूप से सामाजिक एकता की परिस्थिति और न ही विशृंखलता की परिस्थिति पाई जाती है। दुर्खीम सामाजिक एकता का अध्ययन समाजशास्त्र में महत्त्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि यह एक सामाजिक तथ्य है। यद्यपि सामाजिक एकता प्रथम श्रेणी का सामाजिक तथ्य है, फिर भी यह व्यक्तिगत जीवन पर आश्रित है।

दुर्खीम का कथन है कि सामाजिक एकता का अमूर्त रूप में अध्ययन करना ठीक नहीं होगा। क्योंकि कानून सामाजिक एकता बनाए रखने में सहायता देता है इसलिए हमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक एकताओं का अध्ययन करने के लिए विभिन्न प्रकार के कानूनों का वर्गीकरण करना होगा। कानून की प्रकृति यह समझने में सहायता प्रदान करती है कि वहाँ किस प्रकार की संरचना होगी और सामाजिक एकता को किस प्रकार स्थापित किया गया होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के लगभग अभाव वाले समाजों और उन्नत श्रम-विभाजन वाले समाजों में पाए जाने वाले कानूनों का तुलनात्मक अध्ययन किया।

अपने अध्ययन में उन्होंने दो प्रकार के कानूनों को क्रियाशील होते हुए पाया—**दमनकारी कानून** (Repressive law) तथा **क्षतिपूरक कानून** (Restitutive law)। इन्हीं को दुर्खीम ने अपनी व्याख्या का प्रमुख आधार बनाया है तथा यह देखने का प्रयास किया कि यह दोनों प्रकार के कानून किस प्रकार की सामाजिक एकता की ओर इंगित करते हैं। दमनकारी कानून आदिम समाजों में पाया

Scanned with CamScanner

जाता है क्योंकि इन समाजों में अपराध सामूहिक चेतना के विरुद्ध कार्य समझे जाते हैं। सामूहिक चेतना का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड किया जाता है। इसके विपरीत, क्षतिपूरक कानून आधुनिक समाजों में पाया जाता है तथा इसमें अपराध सामूहिक चेतना के विरुद्ध न समझकर व्यक्ति के विरुद्ध समझा जाता है। इस कानून का उद्देश्य क्षति-प्राप्त व्यक्ति की क्षति को पूरा करना है अथवा उसे वह सब-कुछ लौटा देना है जोकि गलत ढंग से उससे छीना गया है। समाज में पाए जाने वाले कानून के आधार पर दुर्खीम ने सामाजिक एकता को दो श्रेणियों में बाँटा है—

(1) यान्त्रिक एकता, तथा

(2) सावयविक एकता।

(1) **यान्त्रिक एकता** (Mechanical solidarity)—इस प्रकार की एकता उन समाजों में पाई जाती है जिनमें दमनकारी कानून की प्रधानता होती है। दुर्खीम का कहना है कि जिस प्रकार की आचार-संहिता समाज में पाई जाती है उसी के अनुरूप एकता उस समाज में मुख्य रूप से पाई जाती है। यान्त्रिक एकता आदिम समाजों में अथवा सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पिछड़े हुए समाजों में पाई जाती है। इन समाजों में विभेदीकरण अर्थात् कार्यों का वितरण न के बराबर है तथा केवल लिंग और आयु के आधार पर ही थोड़ा-बहुत कार्यों में विभेदीकरण पाया जाता है। सामूहिक चेतना (Collective conscience) द्वारा सभी व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बँधे रहते हैं तथा इस सामूहिक चेतना को बनाए रखना सभी व्यक्ति अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। कोई भी ऐसा कार्य करना जिससे कि सामूहिक चेतना को आघात पहुँचता हो, बहुत बुरा अपराध माना जाता है।

अतः यान्त्रिक एकता वह एकता है जोकि व्यक्तियों द्वारा एक जैसे कार्यों के कारण आती है अर्थात् जो समरूपता (Likeness) का परिणाम है। यह एक सरल प्रकार की एकता है जो दमनकारी कानून द्वारा बनाई रखी जाती है। 'यान्त्रिक' शब्द, 'यन्त्र' (Machine) शब्द से बना है। जैसे किसी एक यन्त्र द्वारा उत्पादित सभी वस्तुएँ एक जैसी होती हैं अर्थात् उनमें समरूपता पाई जाती है, ठीक उसी तरह आदिम तथा प्राचीन समाजों में व्यक्तियों के कार्यों के समरूपता पाई जाती है। उनका रहन-सहन, धार्मिक जीवन तथा सामाजिक क्रियाएँ लगभग एक जैसी होती हैं तथा इस प्रकार की समरूपता से उत्पन्न होने वाली एकता को ही दुर्खीम यान्त्रिक एकता की संज्ञा देते हैं।

इस प्रकार यान्त्रिक एकता वहाँ विकसित होती है जहाँ समाज के सदस्यों में समानता एवं समरूपता अधिक पाई जाती है। ऐसे समाज के सदस्य सीधे रूप से समाज से बँधे होते हैं। उनमें रूढ़ियों, प्रथाओं व विश्वासों के प्रति लगभग पूर्ण मतैक्य (Consensus) होता है। इसलिए समाज की चेतना का रूप भी सर्वव्यापी एवं सर्वग्राही 'सामूहिक चेतना' का ही होता है। ऐसे समाज में, अपराध व्यक्ति का वह व्यवहार होता है जो 'सामूहिक चेतना' का उल्लंघन, विरोध या भंजन करता है। ऐसे अपराध के प्रति समाज की बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। इसलिए दण्ड, जो समाज की अपराध के प्रति व्यक्त की गई प्रतिक्रिया ही है, भी अत्यधिक कठोर होता है। दण्ड का उद्देश्य होता है कि दण्डित व्यक्ति की दशा देखकर समाज के अन्य सदस्य सबक सीख लें कि अपराध करने के कैसे भयानक परिणाम होते हैं और वे ऐसा काम करने की हिम्मत न कर सकें। वास्तव में, ऐसे यान्त्रिक सामाजिक एकता वाले समाजों में अपराध किसी व्यक्ति या विशेष समूह के प्रति किया गया गलत कार्य नहीं माना जाता, बल्कि समस्त समूह के प्रति किया गया अपराध माना जाता है। ऐसे समाजों में धर्म का हर क्षेत्र पर प्रभाव होता है और कानून व धार्मिक नियम भी समरूप होते हैं। इसलिए

Scanned with CamScanner

अपराध न केवल समाज के प्रति अनुचित काम है वरन् देवता को भी चुनौती है। इसलिए अपराध का निर्दय और कठोर प्रतिकार किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि यान्त्रिक एकता में व्यक्ति की चेतना अथवा वैयक्तिकता का कोई मोल नहीं है। वह समूह एवं सामूहिक चेतना के सम्मुख नगण्य है।

(2) सावयविक एकता (Organic solidarity)—जैसे-जैसे समाज की जनसंख्या का घनत्व तथा आयतन बढ़ता जाता है वैसे-वैसे व्यक्तियों की आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं के कारण व्यक्तियों के कार्यों में भिन्नता आती है तथा इसके साथ ही इनमें विशेषीकरण बढ़ता है अर्थात् श्रम-विभाजन की वृद्धि होती है। वह एकता जोकि कार्यों की भिन्नता द्वारा विशेषीकरण (अर्थात् श्रम-विभाजन) और इसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों की अन्योन्याश्रितता के कारण आती है उसे दुर्खीम सावयविक एकता कहते हैं। यान्त्रिक एकता के विपरीत, इसमें समरूपता के बजाय भिन्नता व्यक्तियों को एक सूत्र से बाँधने का प्रयास करती है। सावयविक एकता व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है। सावयविक एकता की पुष्टि क्षतिपूरक कानून द्वारा होती है। सहयोगी कानून का दमनकारी कानून पर प्रभुत्व इस बात का प्रतीक है कि श्रम-विभाजन द्वारा जो सम्बन्ध स्थापित होते हैं वे असंख्य होते हैं अर्थात् समरूपता द्वारा स्थापित सम्बन्धों से कहीं अधिक होते हैं।

श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों पर आश्रित हो जाता है तथा इस अन्योन्याश्रितता के कारण समाज में सावयविक एकता आती है। सावयविक एकता की तुलना जीव शरीर से की जा सकती है जिसके सभी अंग एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं। सावयविक एकता वाले समाजों में सामूहिक चेतना की बजाय व्यक्तिवादिता अधिक पाई जाती है।

इस भाँति, सावयविक एकता पर आधारित सामाजिक संरचना में निम्नलिखित लक्षण प्रमुख होते हैं—

(i) इस प्रकार की एकता वाला समाज खण्डात्मक नहीं वरन् संगठित होता है,

(ii) समाज के विभिन्न खण्डों का परस्पर मिलन विलय के समान पूर्ण होता है,

(iii) विभिन्न स्तरों और श्रेणियों का यह एकीकरण विभिन्न बाजारों को भी सारे समाज के लिए एक विस्तृत बाजार के रूप में गठित कर देता है,

(iv) व्यक्तियों का विभिन्न समूहों में विभाजन उनके कुल या वंश के आधार पर नहीं होता वरन् उस कार्य के अनुसार होता है जो वे समाज में सम्पादित करते हैं,

(v) समाज की विभिन्न संगठित संरचनाएँ ऊँचे स्तर की परस्पर निर्भता को प्रकट करती हैं, तथा

(vi) ऐसे सावयविक समाजों में जनसंख्या का भौतिक एवं नैतिक दोनों ही प्रकार का घनत्व बहुत अधिक होता है।

इस प्रकार, श्रम-विभाजन द्वारा जहाँ वैयक्तिकता को विकसित होने के अवसर मिलते हैं वहीं साथ-ही-साथ अन्तर्निर्भरता बढ़ने से सामूहिकता का भी विकास होता है। यह भी सत्य है कि सावयविक एकता में सामूहिक चेतना का प्रभाव क्षेत्र सीमित होता चला जाता है। इसके द्वारा होने वाले रिक्त क्षेत्र में व्यक्ति-चेतनाओं की सहमति पर आधारित व्यावसायिक-आचरण संहिता प्रबल होती जाती है। इसीलिए ऐसे समाजों में दमनकारी अपराधी कानून की अपेक्षा क्षतिपूरक नागरिक कानून का वर्चस्व होता है।

Scanned with CamScanner

दमनकारी तथा क्षतिपूरक कानून
(Repressive and Restitutive Law)

दुर्खीम ने सामाजिक एकता को दो श्रेणियों में बाँटा है– यान्त्रिक एकता तथा सावयविक एकता तथा इन दोनों प्रकारों को दो विशेष प्रकार की वैधानिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित किया है। यान्त्रिक एकता आदिम समाजों में पाई जाती है तथा ऐसे समाजों में मुख्य रूप से दमनकारी कानून का प्रचलन होता है जोकि यान्त्रिक एकता को बनाए रखता है क्योंकि सामूहिक चेतना का उल्लंघन एक अपराध माना जाता है। सावयविक एकता आधुनिक समाजों में पाई जाती है तथा क्षतिपूरक कानून ऐसे आधुनिक समाजों की ही विशेषता है क्योंकि इन समाजों में सामूहिक चेतना की बजाय व्यक्तिवादिता अधिक पाई जाती है।

(1) दमनकारी कानून (Repressive law)—वह सामाजिक एकता जिसका सम्बन्ध दमनकारी कानून से है उसे दुर्खीम यान्त्रिक एकता कहते हैं। इसका उल्लंघन अपराध कहलाता है। इस सम्बन्ध को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि अपराध किसे कहते हैं। अपराध की अनिवार्य विशेषताएँ वे हैं जोकि प्रत्येक प्रकार के अपराधों में पाई जाती हैं। दुर्खीम ऐसी तीन विशेषताओं का उल्लेख करते हैं जोकि सभी प्रकार के अपराधों में पाई जाती हैं—

(1) अपराध किसी समाज में रहने वाले सामान्य व्यक्तियों की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है;
(2) ये भावनाएँ काफी मजबूत होती हैं; तथा
(3) ये भावनाएँ पूर्णतः परिभाषित होती हैं।

इस प्रकार, अपराध वह कार्य है जोकि मजबूत तथा परिभाषित सामूहिक चेतना की दशाओं को ठेस पहँचाता है। अपराध का परिणाम सजा (Punishment) है। सजा कानून के अनुसार दी जाती है तथा यह समाज की ओर से सामूहिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने पर की जाने वाली प्रतिक्रिया है।

आदिम समाजों में क्योंकि सामूहिक भावनाएँ काफी प्रबल होती हैं इसलिए इनका उल्लंघन करने वालों को दण्ड दिया जाता है। दमनकारी कानून का उद्देश्य अपराधी द्वारा की गई क्षति को पूरा करना नहीं है अपितु नैतिक मूल्यों को बनाए रखना तथा सामूहिक इच्छा की पुनर्व्यवस्था करना है। आदिम समाजों में नैतिक तथा वैधानिक उत्तरदायित्व सामूहिक होता है तथा इसी के कारण इन समाजों में यान्त्रिक एकता ही पाई जाती है।

(2) क्षतिपूरक कानून (Restitutive law)—क्षतिपूरक कानून आधुनिक समाजों में पाया जाता है जिनकी प्रमुख विशेषता सावयविक एकता है। जैसे-जैसे समाज की जनसंख्या का घनत्व तथा आयतन बढ़ता जाता है, आदिम समाजों में पाई जाने वाली समरूपता समाप्त हो जाती है तथा इसका स्थान भिन्नताएँ ले लेती हैं। व्यक्ति की आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं, उसे अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है तथा बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य-वितरण एवं विशेषीकरण की आवश्यकता अनुभव की जाने लगती है। सामूहिक चेतना की भावनाएँ समाप्त होने लगती हैं तथा अपराध सामूहिक चेतना के विरुद्ध नहीं समझा जाता अपितु व्यक्ति-विशेष के विरुद्ध कार्य समझा जाने लगता है। इस प्रकार, आधुनिक समाजों में दमनकारी कानून क्षतिपूरक कानून में बदल जाता है। क्षतिपूरक कानून का उद्देश्य क्षति प्राप्त व्यक्ति की हानि को पूरा करना अथवा अनुचित रूप से छीनी गई वस्तु को वापस करवाना है।

इस प्रकार, दुर्खीम सामाजिक एकता को समाज में पाई जाने वाली वैधानिक व्यवस्थाओं से जोड़ते हैं तथा दो प्रकार की वैधानिक व्यवस्थाओं—दमनकारी तथा क्षतिपूरक कानून—के आधार पर सामाजिक एकता को यान्त्रिक तथा सावयविक एकता में बाँटते हैं।

Scanned with CamScanner

सामाजिक एकता के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Evaluation of Theory of Social Solidarity)

दुर्खीम की सामाजिक एकता की अवधारणा और उसके यान्त्रिक एवं सावयवी स्वरूपों की आलोचना भी हुई है। विद्वानों द्वारा उठाई गई प्रमुख आपत्तियाँ इस प्रकार हैं—

(1) दुर्खीम आदिवासी समाजों में समरूपता व सामूहिक चेतना पर अत्यधिक जोर देते हैं, जबकि व्यवहार में खण्डात्मक समाज में भी व्यक्ति की मौलिकता के प्रकट होने के अवसर होते हैं और विभिन्न खण्डों की चेतनाओं में परस्पर विरोध भी हो सकता है।

(2) आदिवासी समाजों में केवल दमनकारी कानून की भूमिका नहीं होती। वहाँ प्रायश्चित करने के या क्षतिपूर्ति के अनेक नियम भी प्रचलित होते हैं। दुर्खीम की 'यान्त्रिक एकता' या 'सावयविक एकता' आनुभविक तथ्यों पर खरी नहीं उतरती।

(3) आदिवासी समाजों व अल्पविकसित समाजों में व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध को एक पुरजे और यन्त्र के बीच सम्बन्ध जैसा मानना यथार्थ से परे है। व्यक्ति और समाज के बीच एक-तरफा और निष्क्रिय सम्बन्ध कभी नहीं होता।

(4) इसी प्रकार उन्नत समाजों में जहाँ अन्योन्याश्रितता बढ़ती है वहीं परस्पर मतभेद व विवाद के अवसर भी बढ़ जाते हैं; आधुनिक समाजों में समूहों के बीच अधिक प्रतिस्पर्द्धा व संघर्ष पाया जाता है।

(5) दुर्खीम का उन्नत समाजों में दमनकारी कानून की भूमिका को नगण्य बताना भूल है। आज के औद्योगिक समाजों में भी दमनकारी कानून की सामाजिक नियन्त्रण में भूमिका बढ़ती ही जा रही है।

(6) दुर्खीम ने उन दशाओं और शक्तियों का वर्णन भी नहीं किया जो सावयविक एकता को, एक बार स्थापित हो जाने के बाद, बनाए रखेंगी। खुद दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के असामान्य स्वरूपों में स्वीकार किया है कि समकालीन समाज बड़ी तेजी से परिवर्तित हो रहा है। समाज में एकता के स्थान पर विघटन की शक्तियाँ क्रियाशील दिखाई देती हैं। इस तरह दुर्खीम का यह सामाजिक संश्लिष्टता अथवा एकता का पूरा चिन्तन ही दोषपूर्ण हो जाता है।

सम्भवतः दुर्खीम भी बाद के वर्षों में अपने द्वारा निर्मित 'यान्त्रिक एकता' और 'सावयविक एकता' की अवधारणाओं की जिम्मेदारी को समझ गए थे। आखिर समाज में श्रम-विभाजन उनकी पहली कृति थी। अपनी बाद की प्रौढ़ रचनाओं में दुर्खीम ने फिर कहीं इन उपर्युक्त अवधारणाओं का प्रयोग नहीं किया। उन्हें इस बात का अहसास हो गया था कि इन अवधारणाओं के प्रयोग से समकालीन औद्योगिक समाज का अध्ययन और विश्लेषण सही ढंग से नहीं हो सकेगा।

अन्त में, हम दुर्खीम के समर्थन में इतना अवश्य कहेंगे कि उन्होंने श्रम-विभाजन के अध्ययन में प्रकार्यात्मक विधि का प्रयोग करके सामाजिक अनुसन्धानों को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने 'श्रम-विभाजन' को एक सामाजिक अथवा नैतिक तथ्य उचित ही कहा है। सामाजिक एकता का बढ़ाने में श्रम-विभाजन का महत्त्वपूर्ण योगदान है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। आधुनिक मानव के लिए दुर्खीम का यह सन्देश बड़ा सारगर्भित है कि व्यक्ति-स्वतन्त्रता एवं विकास के साथ-साथ सामाजिक एकता को बल देना व्यक्ति का नैतिक दायित्व है। उन्हीं के अमर शब्दों में, हमारा प्रथम कर्त्तव्य है कि हम अपने लिए एक नैतिक संहिता बनाएँ (Our first duty is to make moral code for ourselves)[1]।

Scanned with CamScanner